1857 की महान क्रान्ति में बेगम हजरत महल का योगदान

Bindu,
Assistant Professor, Deptt. of History, H.K.M. Sitapur.

प्राचीन भारत में स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था । ये बाहरी क्रिया–कलापों में समान रूप से भाग लेती थीं और पुरूषों को स्त्रीयों से भिन्न कोई विशेष स्थान नहीं प्राप्त था।[1] शिक्षा के सभी क्षेत्र स्त्रियों के लिए समान रूप में खुले थे। प्राचीन भारत में अनेक स्त्रियों ने वेदों के अध्ययन् में उच्च स्थान प्राप्त किया था। ऐसी महिलाओं में से कुछ हैं–लोपामुद्रा, शाक्षी, घोषा,अपाला तथा अन्य। गार्गी प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध दार्शनिक थी।[2]

भारत वर्ष की समााजिक व्यवस्था के अन्तर्गत स्त्रियों का स्थान सदैव ही गरिमा और आदर का रहा है। यहाँ यह माना जाता है कि जहाँ पर स्त्रियों की पूजा होती है, वहीं देवता निवास करते है। हिन्दू धर्म की ही भांति बौद्ध धर्म में भी स्त्रियों को सामाजिक जीवन में सम्मानित स्थान प्रदान किया गया है। स्त्रियों को भी बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में स्वीकार किया जाता था। बुद्ध की प्रमुख शिष्याओं में कई स्त्रियां भी थी। जिनमें हैं–धर्मपाला, अनुपमा, रानीखेमा आदि।

मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन से स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आने शुरू हुये। राजनीतिक अस्थिरता, जनसंख्या का निरन्तर पलायन और आर्थिक दुर्दशा ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सोचनीय बना दिया। निरन्तर होने वाले विदेशी आक्रमणों ने भारत की सामाजिक संरचना को अस्थिर कर दिया। हिन्दू समाज ने व्यवस्था को बनाये रखने के लिये अनेक रूढ़ियों को अपना लिया। बाल–विवाह, सती–प्रथा, पर्दा–प्रथा और स्त्री–शिक्षा के प्रति पूर्वाग्रहों ने महिलाओं की प्रगति को रोक दिया। इन रूढ़ियों और अवरोधों के बावजूद संकट के समय में भी कई महिलाएं प्रशासक, समाज–सुधारक, योद्धा और धार्मिक गुरू के रूप में सामने आई। रानी पद्मिनी, रजिया बेगम, दुर्गावती और चांदबीबी ऐसी ही महिलाएं थी, जिन्होनें प्रशासन–कार्य को भली–भांति सम्पन्न किया। नूरजहां, जहांआरा और जेबुन्निशा मध्ययुगीन भारत की प्रमुख महिलाएं थी।

विदेशी आक्रमणकारियों के प्रभाव से दक्षिण भारत ज्यादा प्रभावित नहीं हुआ था। वहाँ शिक्षा की स्थिति भी बेहतर थी। इसीलिए वहॉ पर महिलाओं की सामाजिक स्थिति बेहतर थी। मराठा महिला शासकों में ताराबाई और अहिल्याबाई होल्कर का नाम प्रमुख है। पंजाबी महिलाओं में कौर का नाम प्रमुख है, जिन्होनें रंजीत सिंह की सहायता की थी।

अंग्रेजों के आगमन में स्थिति में परिवर्तन आने लगा। भारतीय सभ्यता पर पश्चिम का प्रभाव पुरूषों के बजाय स्त्रियों के संदर्भ में अधिक परिवर्तनकारी रहा। पुरूषों के लिये इसने भौतिक स्त्रोतों नैतिक स्तरों और राजनीतिक सम्भावनाओं के क्षेत्र में संसार की नई अवधारणा प्रस्तुत की लेकिन स्त्रियों के लिए धीमे परन्तु निरन्तर स्वयं के सम्बन्ध में नई अवधारणा प्रस्तुत की। यदि पुरूषों ने स्वयं को नये भारत में नागरिक के रूप में पुनर्स्थापित किया, वहीं स्त्रियों ने नये सामाजिक संदर्भ में मनुष्य के रूप में स्व्यं का पुनर्मूल्यांकन किया।

स्त्री और पुरूष मानव समाज के दो संयुक्त हिस्से है। यदि पुरूषों ने स्वयं को दासता से मुक्त करने के लिए हमेशा प्रयास किया है तो औरतें भी इसमें पीछे नहीं रही है। इतिहास ऐसे

स्त्रियों व पुरूषों के साहसिक कार्यो से भरा है जो अपनी मातृभूति की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये लड़े। भारत की स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष का इतिहास भी स्त्री व पुरूष दोनों के संयुक्त प्रयास की कहानियों से भरा है।

1857–58 की महान क्रान्ति में महिलाओं ने जिस भूमिका का निर्वहन किया, उसे अंग्रेजों ने भी सराहा। झांसी की रानी के बारे में सरह्यू रोज ने कहा था कि वह क्रान्तिकारियों की सबसे बहादुर और सबसे अच्छी सैनिक नेता थी। रामगढ़ की रानी को युद्ध क्षेत्र में उस समय मृत्यु प्राप्त हुई जब बेगम हजरत महल नेपाल की शरण में जा चुकी थी।

1857 की क्रान्ति ने भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त कर दिया। क्रान्ति भारतीय इतिहास में एक प्रमुख मोड़ थी जिसने भारतीय राज्यों और अंग्रेजी शासन के मध्य नये सम्बन्धों का निर्माण किया। वह अपने आप में इसलिए अनूठा था, क्योंकि भारतीयों ने अंग्रेजों की राजनीतिक पकड़ से स्वयं को आजाद कराने के लिये पहली बार संगठित होकर सशस्त्र विदोह किया था। क्रान्ति के नेताओं में स्त्री व पुरूष दोनों ही थे। स्त्रियों में बेगम हजरत महल, रानी लक्ष्मी बाई, रामगढ़ की रानी और रानी तासे बाई आदि प्रमुख थी। इनमें से कुछ ने युद्ध–क्षेत्र में सेना का नेतृत्व किया, जबकि दूसरों ने यातनाएं कैद और मृत्यु को सहा।[4]

यह विस्काउण्ट केनिंग का भाग्य था कि क्रान्ति के समय वह ब्रिटिश इण्डियन एम्पायर के जहाज का कप्तान था। माच 1856 में डलहौजी के स्थान पर कैनिंग को भारत का गर्वनर जनरल नियुक्त किया गया था।[5]

1857 की क्रान्ति भारतीय इतिहास का एक सीमा–चिन्ह है। क्रान्ति की उदय का कारण सदा ही इतिहासकारों के मध्य विवाद का विषय रहा है। विभिन्न इतिहासकारों ने इसके उदय के विभिन्न कारण बताये है। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह एक सैनिक विद्रोह था लेकिन वहीं कुछ इतिहासकार इस विद्रोह को विदेशी शासन के विरूद्व ''जनता का विद्रोह'' मानते है।

वी0डी0 सावरकर और पण्डित सुन्दर लाल जैसे भारतीय इतिहासकारों का मानना था कि 1857 की घटनाएं भारतीय स्वतन्त्रता के युद्ध के रूप में पर्याप्त थी, तथाकथित भारतीय विद्रोह एक नियोजित और संगठित राजनीतिक और सैनिक उत्थान था जिसका उद्देश्य भारत में अच्छाई के लिए कम्पनी की शक्ति को नष्ट करना था।[6]

1857 के आन्दोलन में उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। डलहौजी की ''डाक्ट्रिन ऑफ लैप्स'' भारत में उपनिवेशवाद के विकास का महत्वपूर्ण औजार था। भारतीयों के भावनाओं की पूरी तरह उपेक्षा करते हुए डलहौजी ने 1848में सतारा का अधिग्रहण कर लिया था। संबलपुर और जैतपुर का अधिग्रहण 1849 में कर लिया गया। फरवरी 1854 में झांसी का भी इसी आधार पर अधिग्रहण कर लिया गया कि गंगाधर राय की मृत्यु के बाद झांसी राज्य का कोई वैध वारिस नहीं है। विलयन–नीति के अन्तर्गत जिन–जिन राज्यों का अधिग्रहण किया गया, उनमें व्यापक असन्तोष था और वे इसे अंग्रेजों का अत्याचार मानते थे। साथ ही डलहौजी ने कई राज्यों की पेंशन आदि को भी समाप्त करने का निर्णय लिया। पंजाब और वर्मा को सशस्त्र विद्रोह के बाद अधिग्रहीत कर लिया गया। अवध का फरवरी, 1855 में नवाब के कुप्रशासन के आधार पर अधिग्रहण कर लिया गया। इन अधिग्रहणों का विरोध न केवल प्रभावित शासकों ने किया बल्कि सिद्धान्तवादी जनता ने भी किया।

ब्रिटिश शासकों का असली चेहरा सामने आ चुका था। वे अपनी शक्ति व साम्राज्य को बढ़ाने के लिये कुछ भी कर सकते थे। 1857 की महान क्रान्ति का प्रमुख कारण सिपाहियों की

उपेक्षा भी बना। सिपाहियों में असन्तोंष केवल सेवा–शर्तो और वेतन तथा नये नियमों के कार्यान्वयन और भारत से बाहर उनकी नियुक्ति को लेकर ही नहीं था, बल्कि इस बात को लेकर भी थी कि ब्रिटिश सरकार उनकी धार्मिक भावनाओं को आहत कर रही थी। इनफील्ड राइफलों में इस्तेमाल किये जाने वाले कारतूसों को प्रयोग में लाने से पहले दांतों से खोलना पड़ता था। ग्रीज्ड कारतूसों ने विद्रोह की चिंगारी को जला दिया और अंग्रेज सरकार के विरूद्व लोगों ने सशस्त्र क्रान्ति की शुरूआत कर दी।

लार्ड केनिंग की 1856 की ''सर्विस इनलिस्टमेण्ट ऐक्ट'' से भी सैनिक क्षुब्ध थे। इस ऐक्ट के अन्तर्गत यह प्राविधान था कि किसी नये सैनिक की भर्ती तब तक नहीं की जायेगी, जब तक कि वह सेवा के अन्तर्गत कहीं भी की जाने वाली नियुक्ति को पहले ही स्वीकृत नहीं करेगा।[7] यह एक मूर्खतापूर्ण कदम था, जिसने सिपाहियों को सावधान कर दिया। हिन्दू सैनिकों ने इसे अपने धर्म को नष्ठ करने का एक प्रयास माना, क्योंकि नियुक्ति देश के बाहर भी की जा सकती थी।

इसमें कोई संदेह नहीं था कि भारतीय सैनिक अपने अंग्रेज अफसरों के प्रति आज्ञाकारी थे, इसके बावजूद कि अंग्रेजों को सेना में उच्च पद व वेतन प्राप्त था। लेकिन विद्रोह के समय सैनिक भ्रमित थे। कई घटनाओं ने अंग्रेजों की विभेदपूर्ण नीतियों को सामने ला दिया था।

अंग्रेजों की औपनिवेशक यात्रा में भारत आर्थिक दृष्टि से ब्रिटिश आर्थिक हितों के अनुरूप साबित हुआ। उस समय के भारतीय शासकों ने ब्रिटिश आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भारत के शोषण का विरोध नहीं किया। समृद्ध भारत ब्रिटिश उद्योगों को कच्चा माल निर्याप्त करने वाला एक बाजार बन गया। भारत में गरीबी बढ़ने लगी। लोग कड़े परिश्रम के बाद भी वांछित सफलता से वंचित थे। साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ''भूमि राजस्व नीति'' ने भी जनता में व्यापक असन्तोष को जन्म दिया। जमींदार व किसान दोनों ही इससे त्रस्त हो गये। राजस्व–नीति न ही उचित थी और न ही न्यायपूर्ण। सरकार के करों में वृद्धि दिन– प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी, जबकि करदाताओं की क्षमता घटती जा रही थी। जितना जमींदार कर दे सकते थे, उससे कहीं ज्यादा की माँग सरकार द्वारा की जाती थी। सरकार द्वारा करों को अत्यन्त निर्दयतापूर्वक वसूला जाता था। करों की प्राप्ति के लिये राज्यों को नीलाम तक कर दिया जाता था। कर–निर्धारण की असमानता ने जनता को हिला कर रख दिया। सरकार की राजस्व–नीति ने भी 1857 की क्रान्ति की आग को हवा देने में सहायता पहुँचाई।

सामाजिक कारणों ने भी जनता के मन में अंग्रेज विरोधी भावना को उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जिसमें ईसाइयत का भय प्रमुख कारण था। ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों ने लोगों को सशंकित कर दिया था। ये ईसाई मिशनरियां हिन्दू व मुसलमानों के धार्मिक मतान्तर का कार्य करती थी। इन मिशनरियों द्वारा भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक रीतियों की आलोचना की जाती थी। जेलों और बाजारों में बाइबिल के उपदेशों को प्रचारित किया जाता था। वे मस्जिदों व मंदिरों की भी आलोचना किया करते थे। कई सामाजिक अधिनियमों ने भी जनता के मन में असंतोष उत्पन्न किया, क्योंकि ये उनकी धार्मिक भावनाओं को आहत करते थे। सती प्रथा और 1850 के ''कास्ट डिसएबिलिटीज रिमूवल ऐक्ट'' ने रूढ़िवादी हिन्दू समाज को सावधान कर दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा इसे सामाजिक प्रथाओं पर आधाता माना गया। 1856 के ''हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम'' ने असंतोष को तीव्र कर दिया। बालिका–हत्या पर रोक को भी सामाजिक–धार्मिक रीतियों पर आक्रमण माना गया। अंग्रेजों की सामाजिक नीति

ने हिन्दुओं और मुसलमानों के रूढिवाद की जड़ों पर प्रहार किया। आटे में जानवरों की हड्डियों के चूरे के मिश्रण की अफवाह ने जनता को उद्वेलित कर दिया और ''कमल व चपाती'' का वितरण क्रान्तिकारियों के बीच क्रान्ति के विचारों को विकसित करने का माध्यम बन गया।

सन् 1857 का विद्रोह ब्रिटिश शासन की जड़े हिलाने के लिये पर्याप्त था। विद्रोह की शुरूआत ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फौज के सिपाहियों के गदर के साथ शुरू हुई, लेकिन उसने बहुत जल्द ही व्यापक क्षेत्र को अपनी जकड़ में ले लिया। यह जनता की विदेशी शासन के विरूद्व वर्षो से जमी हुई शिकायतों का परिणाम था।[8] वायसराय डलहौजी की विलयन–नीति के कारण देशी रियासतों के राजा भय ग्रस्त हो गये थे। विलयन की नीति का ही सीधा परिणाम था कि नाना साहब, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और बहादुर शाह जफर आदि ब्रिटिश शासन के कट्टर शत्रु हो गये। चर्बी लगे कारतूस के प्रकरण ने चिंगारी को भडकाने का अवसर दिया। चर्बी गाय या सूअर के मांस की होती थी, इस तथ्य ने सिपाहियों की धार्मिक भावनाओं को उभारा और वे विद्रोह करने के लिये तैयार हो गये। उनके विद्रोह ने भारतीय समाज के दूसरे वर्गो को भी विद्रोह का अवसर प्रदान किया।

मेरठ जो कि ब्रिटिश कूट नीति का दिल्ली और मारठा प्रान्तों पर निगरानी रखने के लिये सबसे उपयुक्त स्थान था, के अति उत्साही सिपाहियों और लोगों ने 10 मई, 1857 को सबसे पहले विद्रोह किया और दूसरे स्थान के सिपाहियों और जनता ने शीघ्र ही उसका अनुसरण किया।[9] विद्रोह हिमालय की तराइयों से विंध्य तक और बिहार से राजस्थान तक फैल गया। मेरठ में सिपाहियों ने अपने अफसरों को मारा और दिल्ली के लिये रवाना हुये। दिल्ली पहुॅचना सिपाहियों के लिये गदर का एक संकेत था। उन्होनें बहादुर शाह जफर को अपना नेता और भारत का शासक घोषित किया। जफर भारतीय एकता के प्रतीक बन गये थे। उत्तर और मध्य भारत में सिपाहियों का यह गदर जनता के विद्रोह में बदल गया। 1857 के विद्रोह की शक्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष हिन्दू–मुस्लिम एकता भी थी। देश के स्वाभिमान की रक्षा के लिये उस समय की नारियों ने भी हाथों में तलवारें उठा ली थी।

बेगम हजरत महल ऐसी ही एक महिला थी। वे लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह की पत्नी थी। वे एक प्रभावशाली महिला थी। रसेल कहते है, ''उन्होनें अपने पुत्र के हितों में रूचि लेकर सम्पूर्ण अवध को जागृत कर दिया था और प्रमुख सलाहकारों ने उनके प्रति निष्ठावान रहने की प्रतिज्ञा की।[10] हजरत महल के पुत्र का नाम बिरजिस कादिर था। हजरत महल ने उत्तराधिकारी शासक के रूप में समस्त अधिकारों का प्रयोग किया। उसने कूट नीतिक तरीके से राज्य का शासन किया और अच्छे नेतृत्व के गुण प्रदर्शित किये। राज्य के उच्च विभाग हिन्दुओं और मुसलमानों में बंटे हुए थे।

डलहौजी की अन्तिम उपलब्धि 1856 में अवध साम्राज्य का अधिग्रहण था, स्काटलैण्ट के आकार का एक साम्राज्य जो कि गंगा के किनारे बसा था और मुगलों की पुरानी राजधानी दिल्ली और ब्रिटिश प्रभुसत्ता की नई राजधानी कलकत्ता के बीच से गुजरता था। अवध न्यायालय और लखनऊ सरकार लगभग आधी सदी से बुराई, निर्दयता और भ्रष्टाचार का पर्यायवाची बना हुआ था।[11]

भारत के अवध को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपचारिक रूप से 7 फरवरी, 1855 को जोड़ा गया जब नवाब वाजिद अली शाह ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को प्रशासन सौपें जाने की सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया। 1856 तक भारत के प्रमुख क्षेत्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी

द्वारा जीते जा चुके थे। अनेकों छोटे राज्य डलहौजी के हथकण्डों के आगे झुक गये थे। अवध उत्तर –भारत का हृदय –क्षेत्र था, जिसकी अपनी राजनीतिक व प्रशासनिक समस्याएं थी, यही समय अवध को अंग्रेजों द्वारा अपनी पकड़ में लेने के लिए उपयुक्त था। अवध के संयोजन के तुरन्त बाद आवश्यक वस्तुओं के दामों में तेजी से वृद्वि होने लगी जिसके कारण सामान्य जनता काफी प्रभावित हुई। बेगम हजरत महल राज्य के अधिग्रहण से काफी असंतुष्ट थी और उन्होनें लखनऊ में ही ठहरने का निर्णय लिया जबकि अधिकारच्युत बादशाह वाजिद अली शाह कलकत्ता चले गये और वहीं रहने लगे।[12]

जब अवध रेगुलर इनफैंट्री की 7वीं रेजीमेण्ट के नये कारतूसों को लेने से इंकार कर दिया तब लखनऊ में भी तनाव फैल गया।[13] लखनऊ में विद्रोह की शुरूआत 30 मई, 1857 को हुई। लखनऊ में अंग्रेजों को रेजीडेन्सी में ही विद्रोहियों ने घेर लिया। घाघरा के दूसरी ओर का क्षेत्र बेगम द्वारा संचालित किया जाने वाला प्रदेश था। गोण्डा और बहराइच अंग्रेजी प्रभाव से पूरी तरह मुक्त थे। गोण्डा और चुर्दा के राजा बेगम का साथ दे रहे थे, साथ ही उन्हें नाना साहब और ताला राव का भी समर्थन प्राप्त था, जो कि कानपुर में थे।[14]

हजरत महल लम्बे समय तक राज्य का शासन नहीं कर सकी। सितम्बर 1857 में क्रान्तिकारियों की हार ने इनका उत्साह कम कर दिया। अंग्रेज अफसर आउटरम और हैवलाक ने भी आकर लखनऊ रेजीडेन्सी को क्रान्तिकारियों से आजाद करा लिया। कुछ मुठभेड़ों के बाद आउटरम ने आलमबाग पर भी कब्जा कर लिया। कानपुर में अंग्रेजों की विजय ने भी हजरत महल की योजनाओं को समाप्त कर दिया फिर भी बेगम ने अपने सैनिकों और अफसरों का उत्साह बढ़ाने के लिये कार्य किया। उनकी स्थिति दिन प्रतिदिन कमजोर होती जा रही थी। लेकिन कैंपबेल के वापस कानपुर लौटने पर बेगम ने उस स्थिति का लाभ उठाया। उसने अपने प्रमुखों की सभा बुलाई और इस बात के लिये उनकी आलोचना की कि वे साहस के साथ युद्ध नहीं लड़ रहे है। उन्होनें सिपाहियों को उत्साहित करने का प्रयास किया और स्वयं हाथी पर बैठकर युद्धक्षेत्र में अपनी सेना का संचालन किया।[15]

30 हजार सैनिकों के साथ कोर्लिन कैंपवेल और जंगबहादुर के नेतृत्व में 2 मार्च, 1958 को लखनऊ पर अंग्रेजों ने आक्रमण किया। बेगम हजरत महल ने साहस नहीं छोड़ा और अपने सैनिकों को साहस के साथ युद्ध करने के लिये उत्साहित करती रही। 18 मार्च तक सभी प्रमुख केन्द्र अंग्रेजों के अधिकार में आ चुके थे। साहसपूर्वक अंग्रेजों का मुकाबला करने के कारण बेगम को स्र्वत्र प्रशंसा मिली। वाजिद अली की पत्नी अख्तर महल को पत्र में सरफराज बेगम ने लिखा कि, मुझे नहीं मालूम था कि हजरत महल इतनी बहादुर महिला थी। हाथी पर सवार होकर अंग्रेजों के विरूद्व अपनी सेना का नेतृत्व उन्होनें बिना किसी डर के किया। आलमबाग घमासान युद्ध का क्षेत्र बना था। अहमदुल्ला शाह हजरत महल के साथ मिलकर साहस के साथ युद्ध लड़े, लेकिन किस्मत ने उनका साथ नहीं दिया। ''बेगम सैयदा ने भी वाजिद अली को लिखा कि ''हजरत महल के साहस ने अंग्रेजों को भयभीत कर दिया था। वे अत्यन्त साहसिक निकलीं। उन्होनें सुल्तान आलम के नाम को कायम रखा।[16]

प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण बेगम अपने साथियों और अपने पुत्र बिरजिस कादिर के साथ नेपाल की शरण में चली गई। नेपाली अधिकारियों ने इस शर्त पर बेगम को शरण दी कि वह क्रान्तिकारी नेताओं, सैनिकों और भारत के लोगों से कोई सम्पर्क नहीं करेगी। नेपाल में बेगम को अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा।

विद्रोह को कुचल देने के बाद इंग्लैण्ड की महारानी ने लोगो को सान्त्वना देने के लिये एक घोषणा की, किन्तु बेगम ने रानी की घोषणा के विरूद्व जनता को सचेत करते हुये घोषणा की कि अंग्रेजों की यह पुरानी प्रथा है कि वे किसी भी गलती को चाहे व छोटी हो या बड़ी उसे क्षमा नहीं करते है। बेगम ने समझौतों और सुझावों से सम्बन्धित सभी अनुच्छेदों की आलोचना की और सच्चाई को सामने रखा। अंग्रेजों के समक्ष समर्पण न करने के कारण उनकी पेंशन को देने से इन्कार कर दिया गया जबकि नेपाल सरकार बेगम को 400.00 रूपया मासिक पेंशन देती थी। 1877 में बेगम ने भारत वापस आने का प्रयास किया, लेकिन उन्हें इसकी अनुमति नहीं दी गई। अंग्रेज सरकार के ऐसे दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप बेगम भारत नहीं आ सकी और वे स्थाई रूप से नेपाल में ही रही।

1879 में निर्वासन में रहते हुये एक विदेशी भूमि पर बेगम की मृत्यु हो गयी।

युद्व क्षेत्र में कुछ ऐसी महिलाएं भी थी, जिन्होनें अन्त तक संघर्ष किया लेकिन गुमनाम ही रही। फोर्बस मिशेल ऐसी ही एक महिला का जिक्र करते है जो सिकन्दरबाग में मारी गई थी। उसने एक पुरानी भारी पिस्तौल ले रखी थी। पीपल के पेड़ पर बैठकर उसने लगभग दर्जनों अंग्रेजों को मार गिराया था।[17] रसेल भी एक ऐसी महिला का जिक्र करते है, जो युद्व क्षेत्र में मारी गई थी। वह मर चुकी थी, लेकिन उसके शरीर के पास एक अति विशाल सुरंग थी।[18]

इन घटनाओं से यह भी साबित होता है कि बेगम की सेवा में महिलाएं भी शामिल थी, जिन्होनें जी जान से युद्व किया। भले ही वे धराशायी हो गई, परन्तु उन्होनें अंग्रेजों के भी छक्के छुड़ा दिये। उन्होनें यह मिसाल भी प्रस्तुत की कि साहस और वीरता में वे किसी से कम नहीं है। केवल उन्हें उचित नेतृत्व और मार्ग की जरूरत है।

संदर्भ ग्रन्थ

- राधा कुमुद मुकर्जी, हिन्दू सिविलाइजेशन, (कलकत्ता 1936) पृ0 73
- ए0एस0अल्तेर, दी पोजीशन आफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन फ्राम प्री हिस्टोरिक टाम टू दी प्रेजेक्ट डे (बनारस 1938) पृ0 13
- ''ओ'' मैले, माडर्न इण्डिया–ऐण्ड दी वेस्ट (आक्सफोड 1941) पृ0 445
- मनमोहन कौर, रोल ऑफ वुमेन इन दी फ्रीडम मूवमेण्ट (1857–1947) दिल्ली 1968, पृ0 37
- हर प्रसाद चट्टोपाध्याय, दी सिपॉय म्यूटिनी 1857 (कलकत्ता) 1957) पृ0।
- के0एल0 श्रीवास्तव, दी रिवाल्ट ऑफ 1857 इन सेण्ट्रल इण्डिया–मालवा, (बम्बई 1966) पृ0 23
- एजेक्जेण्डर ललेवेलिन, दी सीज आफ देलही, (ग्रेट ब्रिटेन, 1977) पृ0 20
- विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी और वरण डे, फ्रीडम स्ट्रगल (दिल्ली, 1972) पृ0 32
- श्रीवास्तव नं0–6, पृ0 99
- सर डब्लयू0एच0रसेल, माई डायरी इन इण्डिया इन दी ईयर (1958–59), (लंदन 1860) पृ0 274
- लेलेवेलिन, नं0–, पृ0 10
- वही, पृ0सं0–13
- रूद्रांग्शू मुखर्जी, अवध इन रिवाल्ट 1857–58 (नई दिल्ली 1966) पृ0 66
- वहीं पृ0 125

- जी0बी0मेलेसन, हिस्ट्री ऑफ दी इण्डियन म्यूटिनी 1857–58 (दूसरा एडीसन), (लंदन, 1679) वाल्यूम 2, पृ0 356–57
- कौर, नं0–4, पृ0 42
- डब्ल्यू0 मिशेल फोर्ब्स, रेमिनिसेंज ऑफ दी ग्रेदम्यूटिनी (1857–59), (लंदन, 1910), पृ0 57–58
- रसेल नं0–10, पृ0 357

Copyright © 2015 Bindu . This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.